International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 144-147

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 144-147
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-07-2021
Accepted: 18-08-2021

नरेश कुमार
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़,
पंजाब, भारत

Corresponding Author:
नरेश कुमार
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़,
पंजाब, भारत

आचार्य शुक्र के अनुसार राज्य के प्रमुख सप्तांग

नरेश कुमार

भूमिका

किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति झलक उस देश में उपलब्ध साहित्य में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। भारतीय साहित्य में संस्कृत भाषा का सर्वप्रथम स्थान है। प्राचीन भारतीय साहित्य मूलतः संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होता है अतः संस्कृति भाषा को भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का प्राण माना जाता है। संस्कृत भाषा में उपलब्ध भारतीय साहित्य ही परवर्ती भारतीय साहित्य का उद्गम स्रोत है। संस्कृत साहित्य में इतिहास के साथ-साथ अध्यात्म, समाज एवं राजनीति आदि जीवन के सभी महत्वपूर्ण अंगों का विस्तृत वर्णन किया गया है इसलिए संस्कृत साहित्य को भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है।

संस्कृति साहित्य में विभिन्न व्यवस्थाओं को सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप से चलाने हेतु नीतिशास्त्रों की रचना हुई है। भारतवर्ष में लेखनकला के आरम्भ से वर्तमान पर्यन्त विभिन्न नीतिग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। अतः स्पष्ट है कि मानव के सामाजिक जीवन के साथ-साथ किसी न किसी रूप में नीतिशास्त्र का भी उद्भव हुआ। मानव ने परस्पर मिलकर समाज रूपी ऐसी संरचना का निर्माण किया जिसमें रहकर वह अन्य मनुष्यों की सहायता से विभिन्न समस्याओं का समाधान कर सके इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में उसे कुछ ऐसे नियमों की आवश्यकता अनुभव हुई जिससे की उसका तथा अन्य मनुष्यों का जीवन सुव्यवस्थित एवं सुखी बन सके। नियमों की यह व्यवस्था ही कालक्रम में नीति के रूप में विकसित हुई। इस प्रकार नीतिशास्त्र का सम्बन्ध नैतिक जीवन की समस्याओं से है तथा नैतिक जीवन का इतिहास मानव की संस्कृति से आरम्भ होता है। नीतिशास्त्र के अन्तर्गत व्यक्ति, समाज, परिवार, राष्ट्र, राज्य, राजधर्म आदि विभिन्न सामाजिक अवयवों का वर्णन किया गया है।

संस्कृत साहित्य की प्रत्येक विधा का उद्भव एवं विकास वेदों से ही हुआ है, अतः नीतिशास्त्र का आरम्भ भी वेदों में उपलब्ध जीवन प्रेरक तत्वों से माना जाता है। यथा ऋग्वेद के दशम मण्डल में कहा गया है – हे शुद्ध चरित्र पुरुषों। तुम सब प्रकार के पापों से छुड़ाकर धर्मयुक्त उत्तम आचरण एवं सुनीतियों द्वारा सुमार्ग दिखाते हो। [1] वेदों के पश्चात् ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों में भी नीतियुक्त तत्वों का वर्णन किसी न किसी रूप में किया जाता रहा है। यथा उपनिषदों में सत् एवं असत् भेद के अन्तर्गत प्रार्थना की गई है कि ईश्वर मानव को असत् से सत् की ओर ले चले। [2] नीतिशास्त्र का विकसित रूप धर्मशास्त्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतिग्रन्थों में मिलता है, इनके पश्चात् नीति चिन्तकों द्वारा नेक नीति ग्रन्थों की रचना की गई जहाँ नीतिशास्त्र का पूर्ण विकसित स्वरूप प्राप्त होता है।

नीतिशास्त्रों की श्रेणी में आचार्य शुक्र द्वारा रचित शुक्रनीति एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आचार्य शुक्र का नाम अत्यधिक सम्मानपूर्वक लिया जाता है। शुक्रनीति नामक ग्रन्थ के अल्प अध्ययन मात्र से ही आचार्य शुक्र की श्रेष्ठ बुद्धि का परिचय सहज ही प्राप्त हो जाता है। सर्वांगी प्रतिभा के धनी आचार्य शुक्र द्वारा सभी विषयों का वर्णन पूर्ण अधिकार पूर्वक किया गया है। नीति का सामान्य अर्थ है – किसी व्यक्ति को अनुचित मार्ग से उचित मार्ग की ओर ले जाना। यथा – "नयनात् नीतिरूच्यते"।[1] अतः आचार्य शुक्र द्वारा पथभ्रष्ट मनुष्य को सुमार्ग पर लाने हेतु वर्णाश्रम व्यवस्था एवं दण्ड तथा उसके साधक रूप में सैन्य आदि राजा के सात राज्यांगों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

राज्य के प्रमुख सप्तांग -

आचार्य शुक्र द्वारा वर्णित पूर्वोक्त सभी विषयों के अन्तर्गत राज्य एवं राज्यांगों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि राज्य तथा राज्यांग मानव समाज के विकास एवं उत्कर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य ही धर्म, अर्थ तथा काम रूपी पुरुषार्थों की प्राप्ति का साधन है। राज्य की विशेषता आचार्य सोमदेव द्वारा कथित नीतिवाक्यामृतम् के एक श्लोक में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यथा अथ – [4] धर्मार्थकामफलायराज्याय नमः। नीतिग्रन्थों में की गई राज्य वन्दना को अत्यधिक उपयुक्त एवं सुन्दर कल्पना कहा जा सकता है। विभिन्न राजनैतिक नीतिग्रन्थों में अव्यवस्थित राजहीन एवं अराजक दशा का विभत्स रूप वर्णित किया गया है। इस स्थिति के संरक्षणार्थ ही संगठन एवं क्रमिक रूप से ही राज्य रूपी एक व्यवस्था का विकास किया गया। अतः राज्य रूपी व्यवस्था का मानव समाज के विकास वं उत्थान में महत्वपूर्ण स्थान है। राज्य की संकल्पना अधिकांश नीतिग्रन्थों में मुख्यतः चार सिद्धान्तों के आधार पर की गई है –

1. दैवी सिद्धान्त
2. शक्ति अथवा युद्धसिद्धान्त
3. अनुबन्ध का सिद्धान्त (संविदा)
4. विकासवादी सिद्धान्त

प्राचीन समय में भारतीय समाज कुटुम्बों देशों एवं जनों में विभक्त था तथा इन समुदायों का संगठन परिवार के ही आधार पर होता था। वैदिक साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजव्यवस्था की ईकाई ग्राम था। बहुत से कुलों के संगठन से ही ग्राम का निर्माण होता था। परिवार अथवा कुल का मुखिया गृहपति के रूप में जाना जाता था एवं पारिवारिक जीवन में उस गृहपति की सत्ता सर्वमान्य तथा सर्वोपरि थी।

इस प्रकार जब प्राचीन समय में शासक एवं शासित रूप से दो वर्गों का निर्माण हुआ तो राज्य रूपी संकल्पना की आवश्यकता अनुभव हुई आधुनिक राजनीति विचारक राज्य रूपी संकल्पना को विकास का ही परिणाम मानते हैं। अतः कहा जा सकता है कि मानव जीवन के साथ ही राज्य का आरम्भ हुआ । मनुष्य जीवन परिवार अथवा कुटुम्ब के रूप में विकसित हुआ, परिवारों से ग्राम, ग्रामों के संगठन से दिश एवं दिशों से समुदाय, समुदाय से जन का निर्माण हुआ। जन का सर्वोपरि राजा कहलाता था तथा उसके अधीन जन को जनपद कहा जाता था। कुल, ग्राम, विश एवं जन के मुखिया कुलपति, ग्रामपति, विशपति तथा जनपति कहलाते थे एवं अपने-अपने समुदाय की रक्षा का उत्तरदायित्व इनका ही था। अथर्ववेद में इस सिद्धान्त का वर्णन भी किया गया है।[2] वैदिक काल से ही राजा अपने निकटवर्ती राजाओं को पराजित कर अपने राज्य का विस्तार करते थे।[3] वैदिक काल के पश्चात् राज्यों का विस्तार तीव्र गति से होने लगा। छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक छोटे-छोटे जातीय समुदायों के स्थान पर बड़े एवं निश्चित भू-भाग युक्त राज्यों का रूप देखने को मिलता है।[4]

प्राचीन भारतीय राजशास्त्रियों ने राज्य से ही धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति बतलाई है। किसी भी राज्य के निर्माण एवं पोषण हेतु सात अवयवों की चर्चा राजशास्त्र प्रणेताओं ने की है, जिसे सप्तांग कहते हैं। ये सप्तांग इस प्रकार हैं –

1. स्वामी –(शासक, सम्राट या राजा)
2. अमात्य –(मन्त्री या पुरोहित)
3. जनपद या राष्ट्र –(राज्य की भूमि एवं प्रजा)
4. दुर्ग –(राजधानी अथवा पुर)
5. कोष –(राष्ट्रीय सम्पत्ति, आय के स्रोत एवं शासकीय कोष में द्रव्य राशि)
6. दण्ड –(सेना, बल, दण्ड व्यवस्था)
7. मित्र –(सहयोगी राष्ट्र, कार्यपालिका एवं विधायिका के सदस्यगण)

धर्मशास्त्रों, अर्थशास्त्रों तथा नीतिशास्त्रों में राज्य के इन्हीं सात अंगों का उल्लेख मिलता है। मनु, बृहस्पति, भीष्म, कौटिल्य, कामन्दक, सोमदेव और आचार्य शुक्र ने इन्हीं सात अंगों को स्वीकार किया है। महाभारत के शान्ति पर्व के अनुसार आत्मा, अमात्य, कोश, दण्ड, मित्र, जनपद तथा पुर सप्तांग राज्य के अंग हैं।[8] यहाँ पर राजा को राज्य की

आत्मा माना गया है और इसी कारण राजा के लिए आत्मा शब्द का प्रयोग किया गया है। मनुस्मृति में भी सप्तांग राज्य का वर्णन है।[9] आचार्य कौटिल्य ने राज्य को प्रत्यंगभूत कहा है। उन्होंने अंगों के लिए प्रकृति शब्द का प्रयोग किया है।[10]

विष्णुधर्म सूत्र में राज्य को सप्तांग माना गया है, वहाँ जनपद के स्थान पर राष्ट्र शब्द का प्रयोग किया गया है।[11] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी सप्तांग राज्य स्वीकार किया गया है।[12]

आचार्य कामन्दक ने भी राज्य के सप्तांग रूप का वर्णन किया है।[13] शुक्रनीति में आचार्य शुक्र ने राज्यांगों का विशद विवेचन किया है। राज्य को सप्तांग राज्य से सम्बोधित करते हुए आचार्य शुक्र कहते हैं कि –

स्वाम्यमात्मयसुहृत्कोश राष्ट्र दुर्ग बलानि च।
सप्तांगमुच्यते राज्यं तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः।।[14]

अर्थात् राजा, मन्त्री, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सेना में राज्य के सात अंग कहलाते हैं और इनमें राजा को सर्वश्रेष्ठ अंग मस्तक माना गया है। वे राज्य के उपर्युक्त सात अंगों की तुलना मानव शरीर से करते हैं।

दृगमात्यः सुहृच्छ्रोत्रं मुखं कोशो बलं मनः।
हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रौ राज्यांगानि स्मृतानि हि।।[15]

अर्थात् राज्य रूपी शरीर के मन्त्री नेत्र हैं, मित्र कान, कोष मुख, सेना मन, दुर्ग दोनों हाथ औऱ दोनों पैर। राष्ट्र की उपमा पैरों से इसलिए की गई है, क्योंकि वह राज्य का मूलाधार है। उसी के साथ राजा रूपी शरीर स्थिर रहता है। जिस प्रकार मन इन्द्रियों को किसी कार्य में प्रवृत्त करता है उसी प्रकार राज्य में यदि बल अथवा सेना न हो तो वह अरक्षित रहता है और कोई भी कार्य नहीं कर सकता। इसलिए बल को मन बतलाया है। कोष की तुलना मुख से की है, जिस प्रकार मुख से किया गया भोजन शरीर के सभी अंगों को शक्ति प्रदान कर उन्हें पुष्ट बनाता है, उसी प्रकार राजकोष में धन संचित होने से सभी अंगों की पुष्टि होती है। मन्त्री की उपमा नेत्रों से इसलिए दी गई है, क्योंकि राज्य का प्रायः समस्त व्यवहार मन्त्रियों की देखरेख तथा परामर्श से ही चलता है। दुर्ग की तुलना हाथ से इसलिए की है, क्योंकि जब शरीर पर कोई प्रहार करता है, तो हाथ की सर्वप्रथम प्रहार को निष्फल करते हैं अथवा रोकते हैं, ठीक उसी प्रकार राज्य पर होने वाले आक्रमण का प्रथम प्रहार दुर्ग को ही सहन करना पड़ता है।

इस प्रकार आचार्य शुक्र द्वारा समुचित रूप से राज्य की तुलना मानव शरीर एवं उसके अंगों से की गई है। आचार्य मनु द्वारा राज्यांगों के महत्व के अनुसार ही उनके क्रम निर्धारित किया गया है। [16]

आचार्य मनु का कथन है कि सभी राज्यांगों का निज-निज महत्व है एवं ये एंग एक दूसरे के अभाव में उसकी पूर्ति नहीं कर सकते किन्तु कुछ विषम परिस्थितियों में राजा अमात्य इन दो राज्यांगों का विशेष महत्व रहता है।[17]

आचार्य कौटिल्य के मतानुसार क्रम से विभाजित इन सात राज्यांगों पर विपत्ति आने पर अग्रिम राज्यांग की अपेक्षा पूर्व राज्यांग पर विपत्ति आना अत्यन्त दुष्परिणामकारक है।[18] आचार्य कामन्दक भी इस विषय में यही कहते हैं।[19]

उपसंहार

शरीर के अंगों की भाँति यदि राज्य के किसी भी एक अंग को क्षति पहुँचती है तो उसके दुष्प्रभाव राज्य रूपी सम्पूर्ण शरीर पर पडता है। क्योंकि अस्वस्थ अथवा रूग्ण अंगों के कारण शरीर अपना कोई भी कार्य सम्पादित करने में पूर्णतया समर्थ नहीं हो सकता। इसी कारण आचार्य कामन्दक प्रत्येक राज्यांग को एक दूसरे का पूरक मानते हैं।[20] पाश्चात्य देशों में राज्य के सावयव रूप के सिद्धान्त जहाँ उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित हुए वहीं भारतवर्ष में महाभारत काल में ही उन राज्य के अवयवों का विकास पूर्ण रूप से हो चुका था। सभी नीतिकार एवं राजशास्त्र के विद्वानों द्वारा राज्य के ये सात अंग निष्पक्ष रूप से स्वीकार किए गए हैं।

संदर्भ

1. अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्रप्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नपया सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।
ऋग्वेद –10.63.13
2. असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।
बृहदारण्यकोपनिषद् –1.3.2
3. शु – सा.नी.1.56
4. नीतिवाक्यामृतम् –1.1
5. अथर्ववेद –8.10.13
6. प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा संस्कृति इतिहास, पृ -104
7. भारत में अन्तर्राष्ट्रीय विधि, पृ -36
8. महाभारत, शान्तिपर्व –69.14
9. मनुस्मृति –9.294
10. कौटिल्य अर्थशास्त्र –3.23
11. विष्णुधर्मसूत्र –3.23
12. याज्ञवल्क्यस्मृति –1.353
13. कामन्दकनीतिसार –1.16
14. शुक्रनीतिः –1.61
15. वही –1.62

16. मनुस्मृति –9.295
17. वही –9.297
18. कौटिल्य अर्थशास्त्र –8.1
19. कामन्दकीय नीतिसार –4.2
20. वही –4.2